



अध्याय १३

# प्रकृति-पुरुष विवेक योग



अर्जुन उवाच।  
प्रकृति पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।  
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥ १३-१ ॥

अर्जुन ने कहा - हे केशव मैं भौतिक प्रकृति, इसके भोक्ता, क्षेत्र, क्षेत्र के ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञान के विषय को जानना चाहता हूँ।

श्रीभगवानुवाच।  
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।  
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १३-२ ॥

भगवान् श्री कृष्ण ने उत्तर दिया - हे कुंती पुत्र, इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है और जो इस क्षेत्र को जानता है, प्रज्ञ उन्हें क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।  
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ञानं मतं मम ॥ १३-३ ॥

हे भारत! तुम्हें यह जानना चाहिए कि मैं ही सभी क्षेत्रों का ज्ञाता हूँ। क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ के ज्ञान को ही मैं वास्तविक ज्ञान मानता हूँ।

~ अनुवृत्ति ~

वास्तविक रूप में ज्ञान का आधार, अर्थात्, भौतिक पदार्थ, चेतना एवं परम चेतना (परमेश्वर) में अंतर करने की क्षमता का आगे इस अध्याय में वर्णन किया जाएगा। पिछले कुछ शताब्दियों में पश्चिमी विज्ञान की समझ यह प्रस्तावित करती है कि चेतना कुछ गूढ़ भौतिक पदार्थों के मिश्रण से उत्पन्न होती है। दुसरे शब्दों में यह, उनका यह निष्कर्ष है की शरीर ही आत्मा है। यद्यपि, श्रीमद्भगवद्गीता ऐसे समझ को अज्ञानतापूर्ण मानती है। भौतिक प्रकृति एवं आत्मा, जो शरीर का चेतन ज्ञाता (क्षेत्रज्ञ) है, इनकी समझ के बिना वास्तविक ज्ञान का कोई आधार नहीं है। दोनों एक दुसरे से बिलकुल अलग हैं, ओर जो इस बात को समझता है वही वास्तव में ज्ञानी है।

भौतिक शरीर तीन अतिसूक्ष्म पदार्थों (मन, बुद्धि और मिथ्या अहंकार) एवं पाँच स्थूल पदार्थों (पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और अंतरिक्ष) से बना होता है, जिसे क्षेत्र कहते हैं। अन्तर्यामिता चेतना (आत्मा) को क्षेत्र का ज्ञाता माना जाता है, और परम चेतना जो सभी शरीरों में और व्यक्तिगत चेतना में स्थित है वह समस्त

क्षेत्रों के गतिविधियों का ज्ञाता है। यह इस अध्याय का विषय है और इसे जानने के बाद व्यक्ति इस भौतिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् यद्विकारि यतश्च यत् ।  
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ १३-४ ॥

अब मुझसे यह संक्षेप में सुनों कि वह क्षेत्र क्या है, किन वस्तुओं का वह बना है, उसके विकार क्या हैं, उसकी उत्पत्ति और क्षेत्र का ज्ञाता कौन है और उसका उसपर प्रभाव क्या है।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।  
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमन्दिर्विनिश्चितैः ॥ १३-५ ॥

यह ज्ञान अलग-अलग ऋषियों द्वारा, वेदों द्वारा, विभिन्न रूप से छंदों में वर्णित है, और वेदांत-सूत्र के तार्किक निर्णयात्मक अध्यायों में पाया जाता है।

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।  
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ १३-६ ॥  
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्वेतना धृतिः ।  
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ १३-७ ॥

इसके मुख्य तत्त्व, मिथ्या अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त भौतिक प्रकृति, दस इंद्रियां, मन, पांच इंद्रिय-वस्तुएं, इच्छा, धृति, सुख, पीड़ा, स्थूल शरीर, चेतना और संकल्प हैं। यहाँ वर्णित इन सभी तत्त्वों को क्षेत्र माना जाता है।

अमानित्वमद्भित्वमहिंसा क्षान्तिराज्वम् ।  
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ १३-८ ॥  
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।  
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ १३-९ ॥  
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।  
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ १३-१० ॥  
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।  
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १३-११ ॥  
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।  
एतज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ १३-१२ ॥

इच्छाहीनता, विनम्रता, अहिंसा, सहिष्णुता, सादगी, आध्यात्मिक गुरु की सेवा, पवित्रता, दृढ़ता, आत्म-नियंत्रण, इंद्रिय संतुष्टि से वैराग्य, मिथ्या अहंकार का न होना, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था एवं व्याधि का बोध होना, अनासक्ति, पत्नी, बच्चों तथा गृहस्थ जीवन के प्रति लगाव से मुक्ति, सुखी और संकटपूर्ण परिस्थितियों में सदैव समवृत्ति बनाए रखना, मेरे प्रति निरंतर और दृढ़ भक्ति का होना, एकांत स्थान में निवास करना, जनसाधारण के साथ सामाजिकता की इच्छा से मुक्त होना, आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने में दृढ़ संकल्प का होना, पूर्ण सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखना - इन सभी गुणों को ज्ञान कहा गया है, और इनके विरोधी गुणों को अज्ञान कहा गया है।

~ अनुवृत्ति ~

यहां, ज्ञान की वास्तविक सम्पत्ति का वर्णन किया गया है, जिसके द्वारा मनुष्य, जीवन की पूर्णता (सिद्धि) प्राप्त कर सकता है। श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया यह विस्तृत विवरण एक व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर करता है, जिसके द्वारा वह अज्ञानता से मुक्त हो जाता है। दुर्भाग्यवश, पूर्वी और पाश्चात्य, दोनों आधुनिक समाजों में इस ज्ञान की पूरी तरह से कमी है। ज्ञान के सभी समकालीन क्षेत्रों, अर्थात् जीव विज्ञान, भौतिकी, गणित और दर्शन, शरीर को स्वयं के रूप में स्वीकार करते हैं और मन, बुद्धि, अहंकार और इंद्रियों के संतुष्टि एवं भोग को ही जीवन के लक्ष्य के रूप में स्वीकार करते हैं। यह समझना कि एक जीवन ही सब कुछ है और मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं है, यह पूरी तरह से जीवन के वास्तविक उद्देश्य से रहित है।

भौतिक संसार जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और रोग का स्थान है, और कभी कभी इसे मृत्यु-लोक भी कहा जाता है। सभी जीवित प्राणियों की वास्तविक समस्याएं जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और बीमारी हैं चाहे वे किसी भी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म के हो। कोई भी ज्ञान जिसका उद्देश्य इन दुर्खाओं की समाप्ति नहीं है, वह निश्चित रूप से अधुरा ज्ञान है। बेशक, दवाएं, सर्जरी और चिकित्सा मशीनें हैं जो जन्म के दर्द को कम करती हैं, बुढ़ापे की प्रक्रिया को धीमा करती हैं, कुछ बीमारियों को ठीक करती हैं और मरने की प्रक्रिया को लम्बा रखींचती हैं, लेकिन ये केवल काम चलाऊ या अस्थायी समाधान हैं। व्यक्ति को जीवन के इन मूल समस्याओं को पहचानना चाहिए और जिज्ञासु होना चाहिए की इसका वास्तविक समाधान कहा मिलेगा।

आधुनिक वैज्ञानिक और दार्शनिक समझ के विपरीत, भगवद्गीता कहती है कि यह एक जीवन सब कुछ नहीं है, और मृत्यु के बाद जीवन है। इस भौतिक दुनिया में आने से पहले जीवन था और यह जीवन अनंत काल तक जारी रहेगा। वास्तव में जो बदलता है वह केवल शरीर है। भविष्य में, धर्मपरायण व्यक्तियों के लिए उच्च लोकों में स्वर्गीय सुख को भोगने का जीवन प्राप्त होता है, जबकि अज्ञानी निम्न प्रजाति, जैसे जानवरों या पौधों के शरीर को धारण करते हैं, और योगियों एवं चेतना और परम चेतना के ज्ञान का अर्जन करने वालों के भविष्य का अस्तित्व, भौतिक जगत से परे वैकुण्ठ लोकों में होता है। वहां, जीवन शाश्वत है और शरीर जिससे बना होता है उसे सत्-चित्-आनंद (नित्यत्व, ज्ञान, एवं आनंद) कहते हैं।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्वुते ।  
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तत्त्वासदुच्यते ॥ १३-१३ ॥

अब मैं ज्ञान के उद्देश्य (ज्ञेय) का वर्णन करूँगा, जिसे जानकर व्यक्ति अमरता को प्राप्त कर लेता है। यह मेरे अधीनस्थ है और यह परम ब्रह्मन है जो भौतिक कारण व प्रभाव से परे है।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिक्षिरोमुखम् ।  
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३-१४ ॥

उसके हाथ और पैर सर्वत्र हैं। उसकी आंखें, सिर और मुंह सर्वत्र हैं। उसके कान सर्वत्र हैं। इस प्रकार वह सभी वस्तुओं में व्याप्त है।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।  
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तु च ॥ १३-१५ ॥

वह सभी इंद्रियों और उनके प्रकार्यों को प्रकाशित करता है, हालांकि वह स्वयं किसी भी भौतिक इंद्रियों से रहित है। वह अनासक्त होते हुए सभी का पालनकर्ता है। यद्यपि वह सभी भौतिक गुणों से रहित है, तथापि वह सभी गुणों का स्वामी है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।  
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १३-१६ ॥

## अध्याय १३ – प्रकृति-पुरुष विवेक योग

वह सभी चल व अचल प्राणियों में स्थित है। वह निकट है और उसी समय दूर भी है। अतः वह अतिसूक्ष्म है और उसे पूरी तरह समझना कठिन है।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।  
भूतभर्तु च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १३-१७ ॥

यद्यपि ऐसा लगता है कि वह सभी जीवित प्राणियों में विभाजित है, वास्तव में वह अविभाजित है। वही सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारक कहलाता है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।  
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥ १३-१८ ॥

उसे अंधकार से परे, सभी प्रकाशमानों में सबसे तेजोमय कहा जाता है। वह ज्ञान, ज्ञेय एवं सभी ज्ञान का उद्देश्य है।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समाप्तः ।  
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १३-१९ ॥

इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय को संक्षेप में समझाया गया है। इसे समझ कर ,मेरे भक्त मेरे प्रति प्रेम प्राप्त करते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, परम सत्य (श्री भगवान्) की अनुभूति तीन चरणों में होती है - ब्रह्मन, परमात्मा और भगवान्। प्रस्तुत श्लोकों में श्रीकृष्ण ने जिसे “वह” कहकर संबोधित किया है, उसे अपने अधीनस्थ कहकर भी परम ब्रह्मन बताया है, वे परमात्मा को इंगित कर रहे हैं। उनके (परमात्मा के) हाथ, पैर, आंखें और कान हर जगह हैं और वे सभी जीवित प्राणियों के हृदयों में स्थित हैं। वे पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हैं, वे स्वयं को सभी वस्तुओं के भीतर होने के लिए अपने को विभाजित करते हैं, फिर भी वे स्वयं विभाजित या क्षीण नहीं होते - वे अपना पूर्ण व्यक्तित्व बनाए रखते हैं। यह ईशोपनिषद् के आह्वान मन्त्र में बताया गया है:

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

परम पुरुष परिपूर्ण एवं संपूर्ण हैं, और चूंकि वे पूरी तरह से परिपूर्ण हैं, इसलिए उनसे उद्भव होने वाले सभी वस्तु, जैसे कि यह भौतिक जगत, वे भी परिपूर्ण एवं संपूर्ण हैं। संपूर्ण परम पुरुष से भले ही कई संपूर्ण वस्तुएं उत्पन्न होते हो, इसके बावजूद भी वे संपूर्ण बने रहते हैं।

ऐसा लगता है कि आस्तिक और नास्तिक के बीच का संवाद निरंतर रूप से एक विकट स्थिति में फसा हुआ है। लेकिन जैसा कि पिछले अनुवृत्ति में बताया गया है, भगवद्गीता के पाठक ना तो तथाकथित आस्तिकों को ना नास्तिकों को पूर्ण ज्ञानी मानते हैं। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि तथाकथित आस्तिक के विचार की तुलना में नास्तिक की राय ही अधिक सही है। संवाद में आस्तिक अपने भगवान् (God) को स्थापित करता है, और जो नास्तिक है, वह आस्तिक के तथाकथित बयानों की विवेचना कर यह पता लगाता है कि प्रस्तावित भगवान् क्रोधी, प्रतिशोधी, ईर्ष्यालु, प्रतिहिंसक, दर्द देकर खुश होने वाला भगवान् है। ऐसे दृष्टिंत में हम नास्तिक से सहमत होंगे कि ऐसा कोई ईश्वर नहीं है।

परन्तु, फिर नास्तिक इस निष्कर्ष पर आता है कि ईश्वर के अभाव में यह जगत और उसमें निहित सभी तरह के जीवन शून्यता या अवस्तुता से उत्पन्न हुए हैं - हालांकि उसे इस घटना का ना कोई अनुभव है न उसके पास कोई प्रमाण कि कोई वस्तु अवस्तुता से उद्भव हो सकता है। अतः उसका प्रस्ताव आत्मघाती है।

ईश्वर और उनका गैर-आस्तित्व दोनों ही तथाकथित आस्तिक और नास्तिक की मानसिक भ्रांति है। जबकि, भगवद्गीता के अध्येता इस बात को जानते हैं कि भगवद्गीता का विषय कोई भगवान् पर शोध-निबंध नहीं। भगवद्गीता एक प्रवचन है जिसका उद्देश्य परम सत्य का ज्ञानोदय (प्रबोधन) है। परम सत्य में ज्ञात, जानने योग्य और अज्ञात - ब्रह्माण्ड के पहले, ब्रह्माण्ड के भीतर, ब्रह्माण्ड के पश्चात एवं ब्रह्माण्ड से परे की सभी वस्तुएं उपस्थित हैं।

प्रकृति पुरुषं चैव विद्यनादी उभावपि ।  
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥ १३-२० ॥

यह जानो कि भौतिक प्रकृति और जीवित प्राणी दोनों का कोई आदि नहीं होता। यह समझने का प्रयास करो कि सभी विकार और प्राकृतिक गुण इस भौतिक प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं।

## अध्याय १३ – प्रकृति-पुरुष विवेक योग

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।  
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ १३-२१ ॥

यह कहा जाता है कि भौतिक प्रकृति सभी कारणों व परिणामों का स्रोत है। जीवित प्राणी स्वयं ही अपने सुख एवं दुःख के कारण हैं।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्गे प्रकृतिजान्गुणान् ।  
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ १३-२२ ॥

भौतिक प्रकृति में स्थित, जीवित प्राणी भौतिक प्रकृति से उत्पन्न गुणों का भोग करते हैं। इन गुणों के साथ जुड़ाव के कारण, जीवित प्राणी जीवन की उच्च और निम्न प्रजातियों में बार-बार जन्म लेते हैं।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।  
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ १३-२३ ॥

परम पुरुष जिन्हें परम चेतना (परमात्मा) के रूप में जाना जाता है, इस शरीर के भीतर निवास करते हैं। वे सब के साक्षी, परम अधिकारी, पोषणकर्ता, पालनकर्ता एवं सर्वोच्च नियंत्रक हैं।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।  
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ १३-२४ ॥

इस प्रकार, जो परम पुरुष, भौतिक प्रकृति और भौतिक प्रकृति के गुणों को पूर्ण रूप से समझते हैं, वे किसी भी परिस्थिति में पुनः जन्म नहीं लेते हैं।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।  
अन्ये साङ्घेन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ १३-२५ ॥

कुछ योगी ध्यान के माध्यम से हृदय-स्थित परम पुरुष का आभास करते हैं। कुछ अन्य योगी सांख्य योग की विश्लेषण प्रक्रिया के माध्यम से, जबकि कुछ अन्य उन्हें कर्म-योग के द्वारा अनुभव करते हैं।

अन्ये त्वेवमानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।  
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ १३-२६ ॥

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इन विधियों को नहीं जानते, किंतु केवल दूसरों से सुनकर ही वे उनकी पूजा में संलग्न हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने जो कुछ सुना है, उस पर उनकी श्रद्धा होती है इसलिए वे भी मृत्यु से परे हो जाते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

यह वर्णित है कि भौतिक प्रकृति और जीवित प्राणी (जीवात्मा या पुरुष) दोनों ही अनादि हैं। इसका अर्थ यह है कि भौतिक प्रकृति और जीवात्मा श्री कृष्ण की नित्य शक्तियों के रूप में सृष्टि की रचना के पहले से ही उपस्थित हैं। जीवात्मा का स्रोत या उत्पत्ति समय के शुरू होने से पहले तटस्थ स्तर – भौतिक और आध्यात्मिक स्तर के किनारे में है। इस संबंध में, जीवों की उत्पत्ति और भौतिक प्रकृति दोनों ही अनादि काल से है और इनका कोई पहला कारण नहीं है। वे बिना किसी प्रथम कारण के हैं क्योंकि वे शक्तियां हैं, या यह कहे की वे भगवान् की शक्तियां हैं जो स्वयं ही अनादि या बिना स्रोत के हैं। दूसरे शब्दों में, सभी कारणों के कारण श्रीकृष्ण हैं। इसलिए उन्हें सर्व-कारण-कारणं कहा जाता है।

हालांकि भौतिक प्रकृति और जीवात्मा दोनों ही अनादी एवं नित्य हैं, फिर भी उनके गुण और विशेषताएं विभिन्न हैं। वे एक जैसे नहीं हैं। भौतिक प्रकृति को शरीर, इंद्रियों और अन्य तत्वों के साथ-साथ सुख, दुःख, विलाप और भ्रम जैसे गुणों के परिवर्तनों के रूप में वर्णित किया जाता है। जीवात्मा परम पुरुष के अवयवभूत अंश हैं। वे सत्-चित्-आनन्द हैं - यानि उनका स्वभाव नित्यत्व, ज्ञान एवं आनंद से परिपूर्ण है। जब जीवित प्राणी स्वयं को भौतिक शरीर के रूप में समझते हैं, तो वे सुख एवं दुःख के कष्ट को भुगतते हुए जन्म एवं मृत्यु के चक्र में एक शरीर से दूसरे शरीर में निरंतर देहांतरण करते रहते हैं।

जीवन के सबसे मुख्य प्रश्नों में से एक प्रश्न, “हम कहाँ से आये हैं?” का निश्चित रूप से श्रीमद्भगवद्गीता में उत्तर दिया गया है। फिर भी श्लोक २० में अनादी शब्द के प्रयोग ने कुछ विचारकों को यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रोत्साहित किया है कि जीवात्मा सदैव भौतिक दुनिया में ही रहे हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि जीवित प्राणी शाश्वत हैं, वे भौतिक ब्रह्मांड में ही शुरू होते हैं और सदैव भौतिक ब्रह्मांड में ही रहे हैं। किंतु इस निष्कर्ष का भगवद्गीता के पूर्ववर्ती आचार्यों, जैसे कि श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्री बलदेव विद्याभूषण और अन्यों ने समर्थन नहीं किया है। उनके लिए, अनादि का अर्थ है प्रारंभ-विहीन, या समय के शुरू होने से पहले। जीवात्माओं की उत्पत्ति और अनादि में उनकी शुरुआत के बारे में, वैष्णव आचार्य स्वामी बी. आर. श्रीधर महाराज कहते हैं -

चिरकाल से, मनुष्य ने जीव की उत्पत्ति के बारे में पूछताछ की है। मैं कौन हूँ? मैं कहां से आया हूँ? जीव इस संसार में पहली बार कैसे प्रकट हुआ? आध्यात्मिक अस्तित्व के किस चरण में उसका इस भौतिक संसार में पतन हुआ?

इस संसार में आने वाले जीवों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग वे हैं जो श्री कृष्ण की अनन्त नित्य-लीला की आवश्यकता के कारण आध्यात्मिक वैकुण्ठ लोकों से आते हैं। दुसरे जो व्यवस्थानुरूप आवश्यकता से आते हैं। ब्रह्म-ज्योति, जो की अविभेदित तटस्थ स्तर है, वह अनंत जीवात्माओं, आध्यात्मिक आणविक कणों का स्रोत है।

परम पुरुष के पारलौकिक शरीर की किरणों को ब्रह्म-ज्योति के रूप में जाना जाता है, और ब्रह्म-ज्योति का एक किरण एक जीवात्मा है। जीवात्मा उस प्रभा का एक कण है, और ब्रह्म-ज्योति अनंत जीवात्मा-कणों का सामूहिक परिणाम है। आमतौर पर, जीवात्मा ब्रह्म-ज्योति से निर्गत होती है जो सजीव है और बढ़ रहा है। ब्रह्म-ज्योति के भीतर, किसी प्रकार से उसके संतुलन में विघ्न उत्पन्न होता है और संचलन शुरू होता है। अविभेद से भेद शुरू होता है। संयुक्त चेतना से व्यक्तिगत चेतना की इकाइयाँ (आत्माएं) उभड़ती हैं। और क्योंकि जीवात्मा सचेत है वह स्वतंत्र इच्छा से संपन्न है।

सीमांत स्थिति (तटस्था-शक्ति) से वे या तो शोषण (भौतिक संसार) या समर्पण (वैकुंठ) का पक्ष चुनते हैं। कृष्ण भुलि से जीव अनादि बहिर्मुखा - अनादि का अर्थ है जिसकी कोई शुरुआत नहीं। जब हम शोषण की भूमि में प्रवेश करते हैं, हम समय, स्थान और विचार के उपादान के भीतर आते हैं। और जब हम शोषण करने के लिए आते हैं, ऋण की नकारात्मक भूमि में कर्म और कर्म की प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है।

जब अपनी स्वतंत्र इच्छा के प्रयोग से और अपनी जिज्ञासा के कारण जीवात्मा इस भूमि में प्रवेश करता है - तब से वह इस सीमित संसार का कारक बन जाता है। लेकिन उसकी भागीदारी इस सीमित संसार के प्रारंभ से परे है। इसीलिए उसे अनादी कहा जाता है। अनादी का अर्थ है कि जो इस सीमित संसार के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता।

एक बार भौतिक प्रकृति के संपर्क में आने के बाद, जीव कर्म के अधीन हो जाते हैं - कर्म और उसकी प्रतिक्रिया का नियम। इस नियम के तहत जीवात्मा जीवन

की विभिन्न प्रजातियों में सुख एवं दुःख का अनुभव करते हैं। अपनी भौतिक अस्थाई निवास के दौरान, परमात्मा जीवात्मा के साथ होते हैं और देखते हैं की वह कब अपना शीर्ष परम सत्य (भगवान्) की ओर घुमाएगा। परमात्मा भटकती जीवात्मा की दिशा निर्देशित करते हैं, और जब कोई सत्य को जानने की इच्छा करता है, तब परमात्मा उस जीव के सामने आध्यात्मिक गुरु के रूप में प्रकट होते हैं, जो उसे श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान यथा रूप देते हैं। और इसे प्रकार जीवात्मा जन्म और मृत्यु के इस भव सागर को पार कर लेता है।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।  
गुरु कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति लता बीग ॥

अपने कर्म के अनुसार, जीवात्मा पूरे ब्रह्माण्ड में भटक रहे हैं। कुछ जीवात्मा जो सबसे भाग्यशाली होते हैं, उन्हें गुरु और कृष्ण की कृपा प्राप्त होती है, और ऐसी कृपा से उन्हें भक्ति के लता का बीज प्राप्त होता है। (चैतन्य-चरितामृत, मध्य-लीला १९.१५१)

यावत्सञ्चायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।  
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ १३-२७ ॥

हे भरत वंश के सर्वश्रेष्ठ, यह जानो की जो कुछ चर और अचर विद्यमान है वह क्षेत्र और क्षेत्र के ज्ञाता के संयोजन से ही प्रकट होता है।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।  
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ १३-२८ ॥

कोई वास्तव में तब देखता है, जब वह परमेश्वर को सभी में स्तिथ देखता है और इस बात की अनुभूति करता है की ना तो परम-चेतना (परमात्मा) न व्यक्तिगत चेतना (आत्मा) नश्वर है।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।  
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ १३-२९ ॥

समान रूप से सभी स्थानों पर परमेश्वर को देखने से व्यक्ति कभी भ्रष्ट नहीं होता और तब वह भगवान् के परम धाम को प्राप्त करता है।

**प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।  
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ १३-३० ॥**

जो यह अनुभूति प्राप्त करता है कि सभी गतिविधियाँ भौतिक प्रकृति द्वारा ही कार्यान्वित होते हैं, वही समझता है कि वह कर्ता नहीं है।

**यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।  
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ १३-३१ ॥**

जब व्यक्ति वस्तुतः देखने लगता है, तब वह अपने स्वयं का अपने शरीर के साथ पहचान करना छोड़ देता है। यह समझते हुए कि सभी जीवित प्राणी समान हैं, वह ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करता है और सभी ओर उसका विस्तार देखता है।

~ अनुवृत्ति ~

यह जगत् चर और अचर वस्तुओं से बना हुआ है। चर प्रजाति में मनुष्य, पशु, मछली आदि शामिल होते हैं। अचर वस्तुओं में पेड़, पहाड़, खनिज आदि शामिल होते हैं। श्री कृष्ण कहते हैं कि ये सभी चर और अचर वस्तुएं भौतिक प्रकृति और जीवित प्राणियों का एक संयोजन है। जिसकी दृष्टि गहरी होती है वह देखता है कि परम चेतना (परमात्मा) सभी चीजों के नियंत्रक हैं और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हैं, प्रत्येक कण में एवं प्रत्येक कणों के बीच स्थित हैं। ऐसा द्रष्टा एक वास्तविक ज्ञाता होता है और उसे यह ज्ञान रहता है कि आत्मा और परमात्मा दोनों ही शाश्वत एवं अविनाशी हैं।

सत्य-द्रष्टा, भौतिक प्रकृति के प्रभावों से कभी अपमानित नहीं होता। वह धीरे-धीरे परिपूर्णता के तरफ अग्रसर होता है और श्री कृष्ण के परम धाम को प्राप्त करता है। जो लोग भौतिक प्रकृति से प्रभावित हैं और जिन्हें परमात्मा का कोई ज्ञान नहीं है, वे अनुचित रूप से यह समझते हैं कि वे स्वयं कार्यों के कर्ता हैं, या यह कि वे भौतिक प्रकृति के अधिपति हैं। हालाँकि यह एक मूर्खतापूर्ण विचार है क्योंकि वे स्वयं असहाय रूप से मृत्यु के हाथों पीड़ित हैं।

लेकिन जिन लोगों के पास देखने की क्षमता है, उन्हें जीवन के अनेक रूपों से आत्मा की उपस्थिति का संकेत मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा कहना गलत है कि केवल मनुष्य ही सचेत है या केवल मानव चेतना ही शाश्वत है, किंतु वे सभी चीजें जो जन्म, वृद्धि, पालन, प्रजनन, क्षय और मृत्यु की स्थिति

प्रकट करते हैं, उच्च जन्म (मनुष्य जन्म) में हो या निम्न जन्म (पशु जन्म) में हो, सभी शाश्वत जीव हैं जो भौतिक दुनिया में देहांतरण कर रहे हैं। इस प्रकार, जो स्नेहशील, दयालु और करुणामय है उन्हें जीवन के सभी रूपों के साथ ऐसा होना चाहिए। ऐसा नहीं कि मनुष्यों को छोड़ दिया जाए और पशुओं और अन्य प्रजातियों को हमारे आनंद के लिए मार डाला या उनका शोषण किया जाए। यह विचार भगवद्गीता के दर्शन अनुरूप नहीं है, जो सभी जीवित प्राणियों को परम पुरुष, श्रीकृष्ण, के अवयवभूत अंश के रूप में देखता है। इस प्रकार, सभी जीवित प्राणियों को जीवन का अधिकार है।

**अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।  
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ १३-३२ ॥**

हे कुंती पुत्र, परम चेतना (परमात्मा) का कोई आदि नहीं है, वे भौतिक प्रकृति के गुणों से परे हैं, पारलौकिक हैं, एवं असीम हैं। यद्यपि वे प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में स्थित हैं किन्तु वे न तो कोई कार्य करते हैं, न ही वे किसी कार्य से प्रभावित होते हैं।

**यथा सर्वगतं सौम्यादाकाशं नोपलिप्यते ।  
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ १३-३३ ॥**

जिस प्रकार सर्वव्यापी अंतरिक्ष का सूक्ष्म तत्व किसी भी चीज के साथ घुलता नहीं है, उसी प्रकार आत्मा की व्यक्तिगत इकाई भी भौतिक शरीर के साथ नहीं घुलती, हालांकि वह शरीर के भीतर स्थित होती है।

**यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।  
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ १३-३४ ॥**

हे भारत, जैसे एक सूर्य पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करता है, वैसे ही क्षेत्री (क्षेत्र का स्वामी) पूरे क्षेत्र को रोशन करता है।

**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।  
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ १३-३५ ॥**

जो शरीर और स्वयं के बीच के अंतर को पहचानता व परखता है, और जो भौतिक बंधन से मुक्ति की प्रक्रिया को समझता है, वह भी सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करता है।

~ अनुवृत्ति ~

परमात्मा भौतिक प्रकृति में प्रवेश करते हैं और प्रकृति के भीतर वे ही सबकुछ संभव बनाते हैं, लेकिन वह स्वयं कभी भी उससे (भौतिक प्रकृति से) दूषित नहीं होते। वह कभी भ्रम में नहीं रहते, कभी समय के प्रभाव में नहीं आते, कभी मृत्यु के अधीन या कभी कर्म की प्रतिक्रियाओं और भौतिक प्रकृति के नियमों के अधीन नहीं होते। परमात्मा सदैव भौतिक प्रकृति के स्वामी हैं और भौतिक प्रकृति सदैव उनके अधीन है। हालांकि, जीवात्मा भौतिक शरीर के भीतर स्थित होता है, फिर भी वह शरीर के साथ मिश्रित या उससे एक नहीं होता। जीवात्मा एं सदैव भौतिक शरीर से अलग होते हैं, भले हि वे शरीर से प्रतिबन्धित (अनुकूलित) हो। जो इस बात को श्री कृष्ण के संबंध में समझता है, वह जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां  
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु  
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
प्रकृतिपुरुषविवेकयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् - अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद् भगवद् गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए प्रकृति-पुरुष विवेक योग नामक तेरहवें अध्याय की यहां पर समाप्ति होती है।

